नया विवाह

हमारी देह पुरानी है, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता है। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरन्तन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक-एक अणु में, एक-एक कण में, तार में बसे हुए स्वरों की भाँति, गूँजता रहता है और यह सौ साल की बुढ़िया आज भी नवेली दुल्हन बनी हुई है।

जब से लाला डंगामल ने नया विवाह किया है, उनका यौवन नये सिरे से जाग उठा है। जब पहली स्त्री जीवित थी, तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रात: से दस ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे रात लौटते और थके-माँदे सो जाते। यदि लीला कभी कहती, जरा और सबेरे आ जाया करो, तो बिगड़ जाते और कहते तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूं, या रोजगार बन्द कर दूं ?यह वह जमाना नहीं है कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जायँ। आज उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है; तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता। लीला बेचारी चुप हो जाती।

अभी छ: महीने की बात है। लीला को ज्वर चढ़ा हुआ था। लालाजी दूकान जाने लगे, तब उसने डरते-डरते कहा, था देखो, मेरा जी अच्छा नहीं है। जरा सबेरे आ जाना। डंगामल ने पगड़ी उतारकर खूँटी पर लटका दी और बोले अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय, तो मैं दूकान न जाऊँगा। लीला हताश होकर बोली, मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल जरा सबेरे आने को कहती हूँ।
'तो क्या दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ। ?'

लीला इसका क्या जवाब देती ? पति का यह स्नेहहीन व्यवहार उसके लिए कोई नयी बात न थी। इधर कई साल से उसे इसका कठोर अनुभव हो रहा था कि उसकी इस घर में कद्र नहीं है। वह अक्सर इस समस्या पर

विचार भी किया करती, पर वह अपना कोई अपराध न पाती। वह पति की सेवा अब पहले से कहीं ज्यादा करती, उनके कार्य-भार को हलका करने की बराबर चेष्टा करती रहती, बराबर प्रसन्नचित्त रहती; कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी, तो इसमें उसका क्या अपराध था ? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती है ? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था, तो इसमें उसका क्या दोष ?उसे बेकसूर क्यों दण्ड दिया जाता है ? उचित तो यह था कि 25 साल का साहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता है, जो पके फल की तरह ज्यादा रसीला, ज्यादा मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता है। लेकिन लालाजी का वणिक-ह्रदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराजू से तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती है न बच्चे, तब उसके लिए गोशाला ही सबसे अच्छी जगह है। उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि घर की मालकिन बनी रहे; आराम से खाय और पड़ी रहे। उसे अख्तियार है चाहे जितने जेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे।

मानव-प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डंगामल जिस आनन्द से लीला को वंचित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई जरूरत ही न समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न

करते रहते थे। लीला 40 वर्ष की होकर बूढ़ी समझ ली गयी थी, किन्तु वे तैंतालीस के होकर अभी जवान ही थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए। लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोगन की आड़ लेती, तब लालाजी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते। वे कहते वाह री तृष्णा ! सात लड़कों की तो माँ हो गयी, बाल खिचड़ी हो गये, चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको अभी महावर, सेंदुर, मेहंदी और उबटन की हवस बाकी ही है। औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र है ! न-जाने क्यों बनाव-सिंगार पर इतना जान देती हैं ? पूछो, अब तुम्हें और क्या चाहिए। क्यों नहीं मन को समझा लेतीं कि जवानी विदा हो गयी और इन उपादानों से वह वापस नहीं बुलायी जा सकती ! लेकिन वे खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे। उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी। जाड़ों में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे। हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डाक्टर से मंकीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

लीला ने उन्हें असमंजस में देखकर कातर-स्वर में पूछा,
'क़ुछ बतला सकते हो, कै बजे आओगे ?'

लालाजी ने शान्त भाव से पूछा, 'तुम्हारा जी आज कैसा है ?'

लीला क्या जवाब दे ? अगर कहती है कि बहुत खराब है, तो शायद वे महाशय वहीं बैठ जायँ और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें। अगर कहती है कि अच्छी हूँ, तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे

तक कहीं खबर लें। इस दुविधा में डरते-डरते बोली, 'अब तक तो हलकी थी, लेकिन अब कुछ भारी हो रही है। तुम जाओ, दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे। हाँ, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना। लड़के सो जाते

हैं, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता, जी घबराता है !'

सेठजी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा, 'बारह बजे तक आ जरूर जाऊँगा !'

लीला का मुख धूमिल हो गया। उसने कहा, दस बजे तक नहीं आ सकते ?'

'साढ़े ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं।'

'नहीं, साढ़े दस।'

'अच्छा, ग्यारह बजे।'

लाला वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात को एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा। इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते। जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है, तब यह कहाँ की भलमनसाहत है कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें ? लालाजी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे। चुपके से आकर नौकर को जगाया और अपने कमरे में आकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रतिक्षण विकल-वेदना का अनुभव करती हुई न-जाने कब सो गयी थी। अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लालाजी को उसके मरने का बड़ा दु:ख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजे। एक दैनिक पत्र ने शोक प्रकट करते हुए लीला के मानसिक और धार्मिक सद्गुणों को खूब बढ़ाकर वर्णन किया। लालाजी ने इन सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पाँच वजीफे प्रदान

किये तथा मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया, वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुजरने पाया था कि लालाजी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छ: महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या

करते ? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही और इस उम्र में तो एक तरह से वह अनिवार्य हो गयी थी।

जब से नयी पत्नी आयी, लालाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। दूकान से अब उतना प्रेम नहीं था। लगातार हफ्तों न जाने में भी उनके कारबार में कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छींटे पाकर सजीव हो गयी थी,सूखा पेड़ हरा हो गया था, उसमें नयी-नयी कोपलें फूटने लगी थीं। मोटर नयी आ गयी थी, कमरे नये फर्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरों की भी संख्या बढ़ गयी थी, रेडियो आ पहुँचा था और प्रतिदिन नये-नये उपहार आते रहते थे। लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गयी थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश से ज्यादा स्वच्छ और मनोरंजक होता है। लालाजी को उनके मित्र इस रूपान्तर पर बधाइयाँ देते, जब वे गर्व के साथ कहते भाई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा यहाँ आये तो उसके मुँह में कालिख लगाकर गधो पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढ़ापे को न जाने क्यों लोग अवस्था से

सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है; जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का श्रृंगार से। आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं ? उनकी एक हजार जवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ एक ढोल है। यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के ह्रदय-पटल पर अंकित करते रहे

थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न-जाने क्यों इन बातों में जरा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूट करने के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा, चलो, 'आज बजरे पर दरिया की सैर करें।'

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालाएँ अन्तरराष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रंग-बिरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे। आशा ने बेदिली से कहा, 'मेरा जी तो नहीं चाहता।'
लालाजी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा, 'तुम्हारा मन कैसा है जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता ? चलो, जरा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।'
'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी ?'

'महाराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे तो यों ही उठ जायँगे।'

आशा अपने अवकाश का बड़ा भाग लालाजी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख, रसना का स्वाद ही

रह जाता है। लालाजी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि 'मान-न-मान' चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, ख्वामख्वाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलाहने से बोले, 'तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, ऐसा क्या तूफान आ जायगा ? तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा, 'आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़ देते हैं। यह आदत पड़ जायगी, तो घर का धन्धा कौन करेगा ?

'मुझे घर के धन्धों की रत्ती-भर भी परवा नहीं बाल की नोक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम गृहस्थी की चक्की से दूर रहो और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो ? मैं चाहता हूँ, तुम

मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे आप कहके जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो ! मैं अपने घर में देवता नहीं,चंचल बालक बनना चाहता हूँ।'

आशा ने मुस्कराने की चेष्टा करके कहा, 'भला, मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वाले को कहा, जाता है कि बड़ों को ?'

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनायी होती, तो भी शायद लालाजी को इतना दु:ख न होता, जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठंडा पड़ गया। सिर पर बाँकी रखी

हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदारर् कुत्ता, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे यह सारा ठाठ कैसे उन्हें हास्यजनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मन्त्र से उतर गया हो। निराश होकर बोले, 'तो तुम्हें चलना है या नहीं।'

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँ ?'

'मैं आपको कब मना करती हूँ ?'

'फिर 'आप' कहा, ?'

आशा ने जैसे भीतर से जोर लगाकर कहा, 'तुम' और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा, करो। तो तुम नहीं चल रही हो ? अगर मैं कहूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा ?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े; उस वक्त आशा को उन पर दया आ गयी। बोली, 'तो कब तक लौटोगे ?'

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मैं भी चलती हूँ।'

जैसे कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लालाजी ने मुँह बनाकर कहा, 'तुम्हारा जी नहीं करता, तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।'

'आप नहीं, तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गयी, लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली वेश में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो। ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुँझला उठते थे। ब्याह किया था, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालकर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ, तो तेल डालने से लाभ ? न-जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं,कहाँ-कहाँ से मँगवाये दिल्ली से, कलकत्ते से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं, सैकड़ों। पर केवल सन्दूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐब होता है। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रही है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय, तो यही सोचती रहेंगी कि खर्च कैसे करें। दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इसकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उसमें

अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की वणिक-प्रवृत्ति को कैसे त्याग देते ? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जातीं ग़्रामोफोन अगर बिगड़ गया है,गाता नहीं, या साफ आवाज नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठाकर रख देना, तो मूर्खता है। इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था क़ुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झंगड़,उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता, उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज कि नींबू का शौकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस डपोरशंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा,
'तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल। आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते

रहे कि फुलके तक नहीं बना सकते ?'
जुगल आँखों में आँसू भर-कर कहता बहूजी, 'अभी मेरी उम्र ही क्या है ? सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है !'

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गयी। उसने कहा, 'तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है ?

'आप एक महीना सिखा दें बहूजी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायँगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों ?'

आशा ने हौसला बढ़ाने वाली मुस्कराहट के साथ कहा, 'सालन नहीं, वो बनाना आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया न गया। मसाले में कचाँधा आ रही थी।'

'मैं जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थीं ?'

'अच्छा, तो मैं जब यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा ?'

'आप बैठी रहती हैं, तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकली पड़ती थी जैसे भरी बोतल उँड़ेल दी गयी हो।

'और मैं नहीं रहती तब ?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठता हूँ। वहाँ बैठकर अपनी तकदीर को रोता हूँ।'

आशा ने हँसी को रोककर पूछा, क्यों, रोते क्यों हो ?
'यह न पूछिए बहूजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।'

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गयी, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायँगे; तब तुम चले जाओगे ?'

'और क्या करूँगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा, तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा।'

नहीं, नहीं बहूजी, आप हट जाइए, मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी, कहीं कोई दाग पड़ जाय, तो क्या हो ?' आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उसके हाथ से सँड़सी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली, तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गयी।

आशा ने मुस्कराकर पूछा, 'क्यों, मुँह क्यों लटक गया सरकार का ?'

जुगल रुआँसा होकर बोला, 'आप मुझे डाँट देती हैं, बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिलकुल ही दु:ख नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देखकर मेरा खून सर्द हो जाता है।'

आशा ने दिलासा दिया, 'मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा, कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो ?'

'हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके ही हाथ से छूट पड़े तो ?'

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा, 'आशा, जरा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धाक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो ? इस लड़के से कह दो कि जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं तो मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआयत करे, गधो को जरा भी तमीज नहीं आयी। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को। चूल्हे पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती ?
उसने कहा, 'ज़ुगल रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।'

लालाजी ने कुछ चिढ़कर कहा, 'अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा, तो निकाल दिया जायगा !'

आशा अनसुनी करके बोली, 'दस-पाँच दिन में सीख जायगा, निकालने की क्या जरूरत है ?'

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ।'

'कहती तो हूँ, रोटियाँ बेलकर आयी जाती हूँ।'

'नहीं, मैं कहता हूँ तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो ख्वामख्वाह जिद करते हैं।'

लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी, इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़कर

फेंक दें और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें। जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा, 'आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।'

'बको मत, जल्दी-जल्दी फुलके सेंको, नहीं तो निकाल दिये जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमंगों की-सी सूरत बनाये घूमते हो। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं ? तुम्हें नाई भी

नहीं जुड़ता ?'

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला, 'क़पड़े बनवा लूँ, तो दादा को हिसाब क्या दूंगा ?'

'अरे पागल ! मैं हिसाब में नहीं देने कहती। मुझसे ले जाना।'

जुगल काहिलपन की हँसी हँसा।

'आप बनवायेंगी, तो अच्छे कपड़े लूँगा। खद्दर के मलमल का कुर्त्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर, अच्छा-सा चप्पल।'

आशा ने मीठी मुस्कान से कहा, 'और अगर अपने दाम से बनवाने पड़े। '

'तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा ?'

'बड़े चालाक हो तुम।'

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया आदमी अपने घर में सूखी रोटियाँ खाकर सो रहता है, लेकिन दावत में तो अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता है। वहाँ भी यदि रूखी रोटियाँ मिलें, तो वह दावत में जाय ही नहीं।

'यह सब मैं नहीं जानती। एक गाढ़े का कुर्त्ता बनवा लो और एक टोपी ले लो, हजामत के लिए दो आने पैसे ऊपर से ले लो।'

जुगल ने मान करके कहा, 'रहने दीजिए। मैं नहीं लेता। अच्छे कपड़े पहनकर निकलूँगा, तब तो आपकी याद आवेगी। सड़ियल कपड़े पहनकर तो और जी जलेगा।'

'तुम स्वार्थी हो, मुफ्त के कपड़े लोगे और साथ ही बढ़िया भी।'

'जब यहाँ से जाने लगूँ, तब आप मुझे अपना एक चित्र दीजिएगा।'

'मेरा चित्र लेकर क्या करोगे ?'

'अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा। बस, वही साड़ी पहनकर खिंचवाना, जो कल पहनी थी और वही मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी-नंगी सूरत अच्छी नहीं लगती। आपके पास तो बहुत गहने होंगे।

आप पहनती क्यों नहीं !'

'तो तुम्हें गहने अच्छे लगते हैं ?'

'बहुत।'

लालाजी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा, 'अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं जुगल ? अगर कल से तूने अपने-आप अच्छी रोटियाँ न पकायीं तो मैं तुझे निकाल दूंगा।'

आशा ने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बड़े प्रसन्न मन से लालाजी के साथ गमले देखने चली। इस समय उसकी छवि में प्रफुल्लता की रौनक थी, बातों में भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लालाजी का सारा खिसियानापन मिट

गया था। उसने गमलों को मुग्धा आँखों से देखा। उसने कहा, मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूंगी। सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब ! कितने सुन्दर पौधे हैं, वाह ! इनके हिन्दी नाम भी मुझे बतला देना।'
लालाजी ने छेड़ा, 'सब गमले क्या करोगी ? दस-पाँच पसन्द कर लो। शेष मैं बाहर रखवा दूंगा।'

'जी नहीं। मैं एक भी न छोङूँगी। सब यहीं रखे जायँगे।'

'बड़ी लालचिन हो तुम।'

'लालचिन ही सही। मैं आपको एक भी न दूंगी।'

'दो-चार तो दे दो ? इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।'

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषण से खूब सजाया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली, तब लालाजी की आँखों में ज्योति आ गयी। समझे,अवश्य ही अब उनके प्रेम का जादू 'कुछ-कुछ' चल रहा है। नहीं तो उनके बार-बार के आग्रह करने पर भी, बार-बार याचना करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी-कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी, वह भी ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलंकृत होकर फूली नहीं समाती, इतरायी जाती है, मानो कहती हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ ! पहले जो बन्द कली थी, वह आज खिल गयी थी। लालाजी पर घड़ों नशा चढ़ा हुआ था। वे चाहते थे, उनके मित्र और बन्धु-वर्ग आकर इस सोने की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठंडी करें। देखें कि वह कितनी सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न है। जिन विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह-तरह की शंकाएँ की थीं, वे आँखें खोलकर देखें कि डंगामल कितना सुखी है। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने चमत्कार किया है ! उन्होंने प्रस्ताव किया चलो, कहीं घूम आयें। बड़ी मजेदार हवा चल

रही है।

आशा इस वक्त कैसे जा सकती थी ? अभी उसे रसोई में जाना था, वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। फिर घर के दूसरे धन्धों सिर पर'सवार' हो जायँगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट कर दें ? सेठजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, 'नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूंगा।'

'महाराज के किये कुछ न होगा।'

'तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।'

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रही। मन भी उदास हो गया। एक सोफा पर लेटकर बोली, आज न-जाने क्यों कलेजे में मीठा-मीठा दर्द हो रहा है। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था। सेठजी घबरा उठे।

'यह दर्द कब से हो रहा है ?'

'हो तो रहा है रात से ही, लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा है। रह-रहकर जैसे चुभन हो जाती है।'

सेठजी एक बात सोचकर दिल-ही-दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रंग ला रही हैं। राजवैद्यजी ने कहा, भी था कि जरा सोच-समझकर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हो ! खानदानी वैद्य हैं। इनके बाप बनारस के महाराज

के चिकित्सक थे। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास ! उन्होंने कहा, तो रात से ही यह दर्द हो रहा है ? तुमने मुझसे कहा, 'नहीं, नहीं तो वैद्यजी से कोई दवा मँगवाता।'

'मैंने समझा था, आप-ही-आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ़ रहा है।'

'कहाँ दर्द हो रहा है ? जरा देखूँ ! कुछ सूजन तो नहीं है ?'

सेठजी ने आशा के आँचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्माकर सिर झुका लिया। उसने कहा, 'यह तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ तुम्हें हँसी सूझती है। जाकर कोई दवा ला दो।'

सेठजी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हुए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हें कैसे चैन आ सकता था ? जो लोग उनके विवाह के विषय में द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे, उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया है और इतनी जल्दी।

पहले पंडित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठोंककर बोले, 'भई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती है, ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।'

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखायी। सेठजी यहाँ से उठकर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे, और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-सम्वाद कहा। फागमल बड़ा शोहदा था। मुस्कराकर बोला, मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।

सेठजी की बाँछें खिल गयीं। उन्होंने कहा, 'मैं अपना दु:ख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती है, जरा भी आदमीयत तुममें नहीं है।'

'मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। इसमें दिल्लगी की क्या बात है ? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान ! बस ! अगर यह बात न निकले, तो मूँछें मुड़ा लूँ।'

सेठ की आँखें जगमगा उठीं। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आ गयी। छाती जैसे कुछ फैल गयी। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मजबूती से जमीन पर पड़ने लगे और सिर की टोपी भी न जाने कैसे बाँकी हो गयी। आकृति से बाँकपन की शान बरसने लगी।

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा, 'बस बहूजी,आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूंगा।'

आशा ने नयन-बाण चलाकर कहा, 'क्यों, आज यह नया हुक्म क्यों ? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया।'

'आज की बात दूसरी है।'

'जरा सुनूँ, क्या बात है ?'

'मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज न हो जायँ ?'

'नहीं-नहीं, कहो, मैं नाराज न होऊँगी।'

'आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी; मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती थी। वह शब्द उनके मुख से निकलकर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्टा

कर रहा हो। जुगल के इन सीधे शब्दों में एक उन्माद था, नशा था, एक चोट थी ? आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गयी।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे जुगल, इस तरह क्यों घूरते हो ?'

'जब यहाँ से चला जाऊँगा, तब आपकी बहुत याद आयेगी।'

'रसोई पकाकर तुम सारे दिन क्या किया करते हो ? दिखायी नहीं देते !'

'सरकार रहते हैं, इसीलिए, नहीं आता। फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा है। देखिए, भगवान् कहाँ ले जाते हैं।'

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गयी। उसने कहा, 'क़ौन तुम्हें जवाब देता है ?'

'सरकार ही तो कहते हैं, तुझे निकाल दूंगा।'

'अपना काम किये जाओ, कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम फुलकेभी अच्छे बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सेवर।'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप-से लगते हैं।'

'तुम बड़े मुँहफट हो। खबरदार, जबान सँभालकर बातें किया करो।'

किन्तु अप्रसन्नता का यह झीना आवरण उनके मनोरहस्य को न छिपा सका। वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था। जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा, 'मेरा मुँह कोई बन्द कर ले, यहाँ यों सभी यही कहते हैं। मेरा ब्याह कोई 50 साल की बुढ़िया से कर दे, तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँ। या तो खुद जहर खा लूँ या उसे जहर देकर मार डालूँ। फाँसी ही तो होगी ?'

आशा उस कृत्रिम क्रोध को कायम न रख सकी। जुगल ने उसकी ह्रदयवीणा के तारों पर मिज़राब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत ज़ब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आयी। उसने कहा, 'भाग्य भी तो

कोई वस्तु है।'

'ऐसा भाग्य जाय भाड़ में।'

'तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी, देख लेना !'

'तो मैं भी जहर खा लूँगा। देख लीजिएगा।'

'क्यों बुढ़िया तुम्हें जवान स्त्री से ज्यादा प्यार करेगी, ज्यादा सेवा करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'यह सब माँ का काम है। बीवी जिस काम के लिए है, उसी काम के लिए है।'

'आखिर बीवी किस काम के लिए है ?'

मोटर की आवाज आयी। न-जाने कैसे आशा के सिर का अंचल खिसककर कंधो पर आ गया। उसने जल्दी से अंचल खींचकर सिर पर कर लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी कि 'लाला भोजन करके

चले जायँ, तब आना।'